शांति

मुंशी प्रेमचंद

शान्ति

जब मैं ससुराल आयी, तो बिल्कुल फूहड़ थी। न पहनने-ओढ़ने का सलीका, न बातचीत करने का ढ़ंग। सिर उठाकर किसी से बातचीत न कर सकती थी। आंखें अपने आप झप जाती थीं। किसी के सामने जाते शर्म आती, स्त्रियों तक के सामने बिना घूंघट के झिझक होती थी। मैं कुछ हिन्दी पढ़ी हुई थी; पर उपन्यास, नाटक आदि के पढ़ने में आनन्द न आता था। फुर्सत मिलने पर रामायण पढ़ती। उसमें मेरा मन बहुत लगता था। मैं उसे मनुष्य-कृत नहीं समझती थी। मुझे पूरा-पूरा विश्वास था कि उसे किसी देवता ने स्वयं रचा होगा। मैं मनुष्यों को इतना बुद्धिमान और सहृदय नहीं समझती थी। मैं दिन भर घर का कोई-न-कोई काम

करती। और कोई काम न रहता, तो चर्खे पर सूत कातती। अपनी बूढ़ी सास से थरथर कांपती थी। एक दिन दाल में नमक अधिक हो गया। ससुरजी ने भोजन के समय सिर्फ इतना ही कहा—'नमक जरा अन्दाज से डाला करो।' इतना सुनते ही हृदय कांपने लगा। मानो मुझे इससे अधिक कोई वेदना नहीं पहुँचाई जा सकती थी।

लेकिन मेरा यह फूहड़पन मेरे बाबूजी (पतिदेव) को पसन्द न आता था। वह वकील थे। उन्होंने शिक्षा की ऊँची डिगरियां पायी थीं। वह मुझ पर प्रेम अवश्य करते थे; पर उस प्रेम में दया की मात्रा अधिक होती थी। स्त्रियों के रहन-सहन और शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार बहुत

ही उदार थे। वह मुझे उन विचारों के बहुत नीचे देखकर कदाचित् मन-ही-मन खिन्न होते थे; परन्तु उसमें मेरा कोई अपराध न देखकर हमारे रस्म-रिवाज पर झुँझलाते थे। उन्हें मेरे साथ बैठकर बातचीत करने में जरा भी आनन्द न आता। सोने आते तो कोई-न कोई अंग्रेजी पुस्तक साथ लाते, और नींद न आने तक पढ़ा करते। जो कभी मैं पूछ बैठती कि क्या पढ़ते हो, तो मेरी ओर करुण-दृष्टि से देखकर उत्तर देते—'तुम्हें क्या बतलाऊँ, यह आस्कर वाइल्ड की सर्वश्रेष्ठ रचना है।' मैं अपनी अयोग्यता पर बहुत लज्जित थी। अपने को धिक्कारती, में ऐसे विद्वान् पुरुष के योग्य नहीं हूँ।

मुझे तो किसी उजड्ड के घर पड़ना था। बाबूजी मुझे निरादर को दृष्टि से नहीं देखते थे, यही मेरे लिए सौभाग्य की बात थी।

एक दिन संध्या-समय मैं रामायण पढ़ रही थी। भरतजी रामचन्द्रजी की खोज में निकले थे। उनका करुण विलाप पढ़कर मेरा हृदय गद्गद् हो रहा था। नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। हृदय उमड़ा आता था। सहसा बाबूजी कमरे में आये। मैंने पुस्तक तुरन्त बन्द कर दी। उनके सामने मैं अपने फूहड़पन को भरसक प्रकट न होने देती थी; लेकिन उन्होंने पुस्तक देख ली और पूछा—रामायण है न? मैंने अपराधियों की भांति सिर झुकाकर कहा—हां, जरा देख रही थी।

बाबूजी—इसमें शक नहीं कि पुस्तक बहुत ही अच्छी, भावों से भरी हुई है; लेकिन इसमें मानव-चरित्र को वैसी खूबी से नहीं दिखाया गया, जैसा अँगरेजी या फ्रांसीसी लेखक दिखलाते हैं। तुम्हारी समझ में तो न आवेगा लेकिन कहने में क्या हरज है, योरप में आजकल 'स्वाभाविकता' (Realism) का जमाना है। वे लोग मनोभावों के उत्थान और पतन का ऐसा वास्तविक वर्णन करते हैं कि पढ़कर आश्चर्य होता है। हमारे यहां कवियों को पग-पग पर धर्म तथा नीति का ध्यान रखना पड़ता है, इसलिए कभी-कभी उनके भावों में अस्वाभाविकता आ जाती है। और यही त्रुटि तुलसीदास में भी है।

मेरी समझ में उस समय कुछ भी न आया। बोली—मेरे लिए तो यही बहुत है, अंगरेजी पुस्तकें कैसे समझूँ।

बाबूजी—कोई कठिन बात नहीं। एक घंटे भी रोज पढ़ो, तो थोड़े ही समय में काफी योग्यता प्राप्त कर सकती हो; पर तुमने तो मानो मेरी बातें न मानने की सौगन्ध ही खा ली है। कितना समझाया कि मुझसे शर्म

करने की आवश्यकता नहीं; पर तुम्हारे ऊपर कुछ असर न पड़ा। कितना कहता हूँ कि जरा सफाई से रहा करो। परमात्मा सुन्दरता देता है तो चाहता है कि उसका शृंगार भी होता रहे; लेकिन जान पड़ता है, तुम्हारी दृष्टि में उसका कुछ भी मूल्य नहीं! या शायद तुम समझती हो कि मेरे-जैसे कुरूप मनुष्य के लिए तुम चाहे जैसे भी रहो, आवश्यकता से अधिक अच्छी हो। यह अत्याचार मेरे ऊपर है। तुम मुझे ठोक-पीटकर वैराग्य सिखाना चाहती हो। जब मैं दिन-भर मेहनत करके कमाता हूँ, तो स्वभावतः मेरी यह इच्छा होती है ऊस द्रव्य का सबसे उत्तम व्यय हो; परन्तु तुम्हारा फूहड़पन और पुराने विचार मेरे सारे परिश्रम पर पानी फेर देते हैं। स्त्रियां केवल भोजन बनाने, बच्चे पालने, परिवार की सेवा करने और एकादशी व्रत रखने के लिए नहीं हैं, उनके जीवन का लक्ष्य इससे बहुत ऊँचा है। वे मनुष्यों के समस्त सामाजिक और मानसिक विषयों में समान रूप से भाग लेने की अधिकारिणी हैं। उन्हें मनुष्यों की भांति स्वतन्त्र रहने का भी अधिकार प्राप्त है। मुझे तुम्हारी यह बन्दी-दशा देखकर बड़ा कष्ट होता है। स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी मानी गई है; लेकिन तुम मेरी मानसिक या सामाजिक, किसी आवश्यकता को पूरा नही कर सकतीं और तुम्हारा धर्म अलग, आचार-विचार अलग, आमोद-प्रमोद के विषय अलग। जीवन के किसी कार्य में मुझे तुमसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती। तुम स्वयं विचार कर सकती हो कि ऐसी दशा में मेरी जिन्दगी कैसी बुरी कट रही है।

बाबूजी का कहना बिल्कुल यथार्थ था। मैं उनके गले में एक जंजीर की भांति पड़ी हुई थी। उस दिन से मैंने उन्हीं के अनुसार चलने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। अपने देवता को किस भांति अप्रसन्न करती?

यह तो कैसे कहूं कि मुझे पहनने-ओढ़ने से प्रेम न था, और उतना ही था, जितना दूसरा स्त्रियों को होता है। जब बालक और वृद्ध तक शृंगार पसन्द करते हैं, तो मैं तो युवती ठहरी। मन भीतर-ही-भीतर मचल कर रह जाता था। मेरे मायके में मोटा खाने और मोटा पहनने की चाल थी। मेरी माँ और दादी हाथ से सूत कातती थी, और जुलाहे से उसी सूत के कपड़े बुनवा लियें जाते थे। बाहर से बहुत कम कपड़े आते थे। मैं कभी जरा महीन कपड़ा पहनना चाहती या शृंगार की रुचि दिखाती, तो अम्माँ फौरन टोकतीं और समझातीं कि बहुत बनाव-सँवार भले घर की लड़कियों को शोभा नहीं देता। ऐसी आदत अच्छी नहीं। यदि कभी वह मुझे दर्पण के सामने देख लेतीं, तौ झिड़कने लगतीं; परन्तु अब बाबूजी की जिद से मेरी यह झिझक जाती रही। मेरी सास और ननदें मेरे बनाव-शृंगार पर नाक-भौं सिकोड़तीं; पर मुझे अब उनकी परवा न थी। बाबूजी की प्रेम-परिपूर्ण दृष्टि के लिए मैं झिड़कियाँ भी सह सकती थी। अब उनके और मेरे विचारों में समानता आती जाती थी। वह अधिक प्रसन्न-चित्त जान पड़ते थे। वह मेरे लिए फेशनेबुल साड़ियाँ, सुन्दर जाकटें, चमकते हुए जूते और कामदार स्लीपरें लाया करते, पर मैं इन वस्तुओं को धारण कर किसी के सामने न निकलती, ये वस्त्र केवल बाबूजी के ही सामने पहनने के लिए रखे थे। मुझे इस प्रकार बनी-ठनी देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। स्त्री अपने अति की प्रसन्नता के लिए क्या नहीं कर सकती? अब घर के काम-काज से अधिक मेरा समय बनाव-शृंगार तथा पुस्तकावलोकन में ही बीतने लगा। पुस्तकों से मुझे प्रेम होने लगा था।

यद्यपि अभी तक मैं अपने सास-ससुर का लिहाज करती थी, उनके सामने बूट और गाउन पहन कर निकलने का साहस न होता था, पर मुझे

ी शिक्षा-पूर्ण बातें न भाती थीं। मैं सोचती, जब मेरा पति सैकड़ों रुपये
ना कमाता है, तो घर में चेरी बनकर क्यों रहूँ? यों अपनी इच्छा से
जितना काम करूँ; पर वे लोग मुझे आज्ञा देनेवाले कौन होते हैं।
में आत्माभिमान की मात्रा बढ़ने लगी। यदि अम्मां मुझे कोई काम
ा को कहतीं, तो मैं अदबदाकर उसे टाल जाती। एक दिन उन्होंने
—सवेरे के जलपान के लिए कुछ दालमोठ बना लो। मैं बात अनसुनी

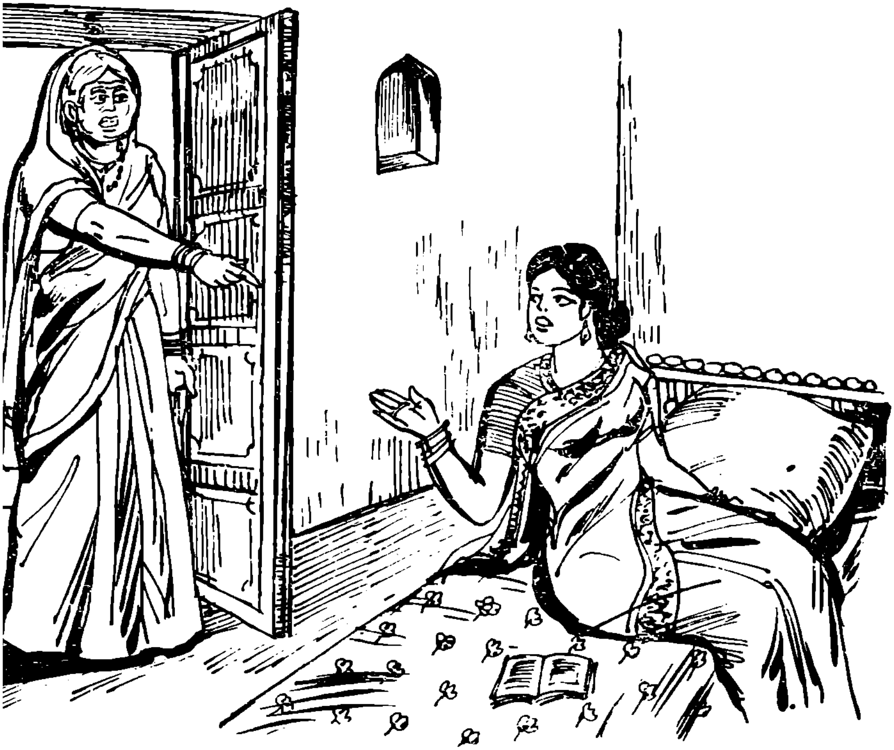

अम्मां ने क्रोधित होकर दालमोठ बनाने को कहा कि दालमोठ बनाया?
प्रत्युत्तर मैंने कहा अभी फुर्सत नहीं मिली।

कर गयी। अम्माँ ने कुछ देर तक मेरी राह देख; पर जब मैं अपने कमरे से न निकली, तो उन्हें गुस्सा हो आया। वह बड़ी ही चिड़चिड़ी प्रकृति की थीं। तनिक-सी बात पर तुनक जाती थीं। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का इतना अभिमान था कि मुझे बिलकुल लौंडी समझती थीं। हाँ, अपनी पुत्रियों से सदैव नम्रता से पेश आती; बल्कि मैं तो यह कहूँगी कि उन्हें सिर चढ़ा रखा था।

वह क्रोध में भरी हुई मेरे कमरे के द्वार पर आकर बोलीं— तुमसे मैंने दालमोठ बनाने को कहा था, बनाया ? मैं कुछ रुष्ट होकर बोली— अभी फुर्सत नहीं मि

अम्माँ – तो तुम्हारी जान में दिन-भर पड़े रहना ही बड़ा काम है ? यह आजकल तुम्हें हो क्या गया है ! किस घमंड में हो ! क्या यह सोचती हो, कि मेरा पति कमाता है, तो मैं काम क्यों करूँ ? इस घमंड में न भूलना ! तुम्हारा पति लाख कमाये; पर घर में राज मेरा ही रहेगा। आज वह चार पैसे कमाने लगा है, तो तुम्हें मालकिन बनने की हवस हो रही है; लेकिन उसे पालने-पोसने तुम नहीं आयी थीं, मैंने ही उसे पढ़ा-लिखाकर इस योग्य बनाया है। वाह ! कल की छोकरी और अभी से यह गुमान !

मैं रोने लगी। मुँह से एक बात न निकली। बाबूजी उस समय ऊपर कमरे में बैठे कुछ पढ़ रहे थे। ये बातें उन्होंने सुनीं। उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। रात को जब वह घर आये तो बोले—देखा तुमने आज अम्माँ का क्रोध ? यही अत्याचार है, जिससे स्त्रियों को अपनी जिन्दगी पहाड़ मालूम होने

लगती है। इन बातों से हृदय में कितनी वेदना होती है, इसका जानना असम्भव है। जीवन भार हो जाता है, हृदय जर्जर हो जाता है, और मनुष्य की आत्मोन्नति उसी प्रकार रुक जाती है, जैसे जल, प्रकाश और वायु के बिना पौधे सूख जाते हैं। हमारे घरों में यह बड़ा अन्धेर है। अब मैं तो उनका पुत्र ही ठहरा, उनके सामने मुँह नहीं खुल सकेगा। मेरे ऊपर उनका बहुत बड़ा अधिकार है, अतएव उनके विरुद्ध एक शब्द भी कहना मेरे लिए लज्जा की बात होगी, और यही बन्धन तुम्हारे लिए भी है। यदि तुमने

अम्मां की बातों पर क्षुब्ध होकर बाबूजी मुझसे बोले, या तो उनकी घुड़कियों को सहे जाओ, या अपने लिए कोई दूसरा रास्ता ढूंढो।

उनकी बातें चुपचाप न सुन ली होतीं, तो मुझे बहुत ही दुःख होता। कदाचित् मैं विष खा लेता। ऐसी दशा में दो ही बातें सम्भव हैं, या तो सदैव उनकी घुड़कियों-झिड़कियों को सहे जाओ, या अपने लिए कोई दूसरा रास्ता ढूँढ़ो। अब इस बात की आशा करना कि अम्माँ के स्वभाव में कोई परिवर्तन होगा, बिलकुल भ्रम है। बोलो, तुम्हें क्या स्वीकार है।

मैंने डरते-डरते कहा—आपकी जो आज्ञा हो, वह करूँ। अब मैं न पढ़ूंगी-लिखूंगी; और जो कुछ वह कहेंगी, वही करूँगी। यदि वह इसी में प्रसन्न हैं तो यही सही—मुझे पढ़-लिखकर क्या करना है ?

बाबूजी—पर यह मैं नहीं चाहता। अम्माँ ने आज आरम्भ किया है। अब रोज बढ़ती ही जायँगी। मैं तुम्हें जितनी ही सभ्य तथा विचारशील बनाने की चेष्टा करूँगा, उतना ही उन्हें बुरा लगेगा, और उनका गुस्सा तुम्हीं पर उतरेगा। तुम्हें पता नहीं कि जिस आबहवा में उन्होंने अपनी जिन्दगी बिताई है, वह अब नहीं रही। विचार-स्वातंत्र्य और समयानुकूलता उनकी दृष्टि में अधर्म से कम नहीं। मैंने यह उपाय सोचा है कि किसी दूसरे शहर में चलकर अपना अड्डा जमाऊँ। मेरी वकालत भी यहाँ नहीं चलती; इसलिए किसी बहाने की भी आवश्यकता न पड़ेगी।

मैं इस तजवीज के विरूद्ध कुछ न बोली। यद्यपि मुझे अकेले रहने में भय लगता था, तथापि वहाँ स्वतंत्र रहने की आशा ने मन को प्रफुल्लित कर दिया।

उसी दिन से अम्माँ ने मुझसे बोलना छोड़ दिया। महरियों, पड़ोसियों ननदों के आगे मेरा परिहास किया करतीं। यह मुझे बहुत बुरा मालूम ा था। इसके पहले यदि वह कुछ भली-बुरी बात कह लेतीं, तो मुझे कार था। मेरे हृदय से उनकी मान-मर्यादा घटने लगी। किसी मनुष्य इस प्रकार कटाक्ष करना उसके हृदय से अपने आदर को मिटाने के न है। मेरे ऊपर सबसे गुरुत्तर दोषारोपण यह था कि मैंने बाबूजी पर मोहन-मंत्र फूंक दिया है, वह मेरे इशारों पर चलते हैं, पर यथार्थ में उल्टी ही थी।

जन्माष्टमी के त्योहार पर ठाकुरजी के गाने बजाने के ढोंग पर भी बाबूजी बिलकुल क्षुब्ध होते -

भाद्र मास था। जन्माष्टमी का त्यौहार आया। घर में सब लोगों ने व्रत रखा। मैंने भी सदैव की भाँती व्रत रखा था। ठाकुरजी का जन्म रात को बारह बजे होने वाला था, हम सब बैठी गाती-बजाती थीं [illegible] असभ्य त्यौहारों के बिलकुल विरुद्ध थे। वह होली के दिन [illegible] गाने-बजाने की तो बात ही अलग। रात को एक बजे जब मैं [illegible] में गयी, मुझे समझाने लगे—इस प्रकार शरीर को कष्ट देने से क्या लाभ? कृष्ण महापुरुष अवश्य थे, और उनकी पूजा करना हमारा कर्तव्य है; पर इस गाने-बजाने से क्या फायदा? इस ढोंग का नाम धर्म नहीं है। धर्म का सम्बन्ध सचाई और ईमान से है, दिखावे से नहीं।

बाबूजी स्वयं इसी मार्ग का अनुकरण करते थे। वह भगवद्गीता की अत्यंत प्रशंसा करते; पर उसका पाठ कभी न करते थे। उपनिषदों की प्रशंसा में उनके मुख से मानो पुष्प-वृष्टि होने लगती थी, पर मैंने उन्हें कभी कोई उपनिषद पढ़ते नहीं देखा। वह हिन्दू धर्म के गूढ़ तत्व-ज्ञान पर लट्टू थे; पर उसे समयानुकूल नहीं समझते थे। विशेषकर वेदान्त को तो भारत की अवनति का मूल कारण समझते थे। वह कहा करते कि इसी वेदान्त ने हमको चौपट कर दिया, हम दुनिया के पदार्थों को तुच्छ समझने लगे, जिसका फल अब तक भुगत रहे हैं। अब उन्नति का समय है। चुपचाप बैठे रहने से निर्वाह नहीं। संतोष ने ही भारत को गारत कर दिया।

उस समय उनको उत्तर देने की शक्ति मुझमें कहां थी? हां, अब जान पड़ता है कि वह योरोपियन-सभ्यता के चक्कर में पड़े हुए थे। वह अब स्वयं ऐसी बातें नहीं करते, वह जोश अब ठंडा हो चला है।

इसके कुछ दिन बाद हम इलाहाबाद चले आये। बाबूजी ने पहले ही एक दोमंजिला मकान ले रखा था—सब तरह से सजा-सजाया। हमारे यहां पांच नौकर थे, दो स्त्रियां, दो पुरुष और एक महाराज। अब मैं घर के कुल काम-काज से छुट्टी पा गयी। कभी जी घबराता, तो कोई उपन्यास लेकर पढ़ने लगती।

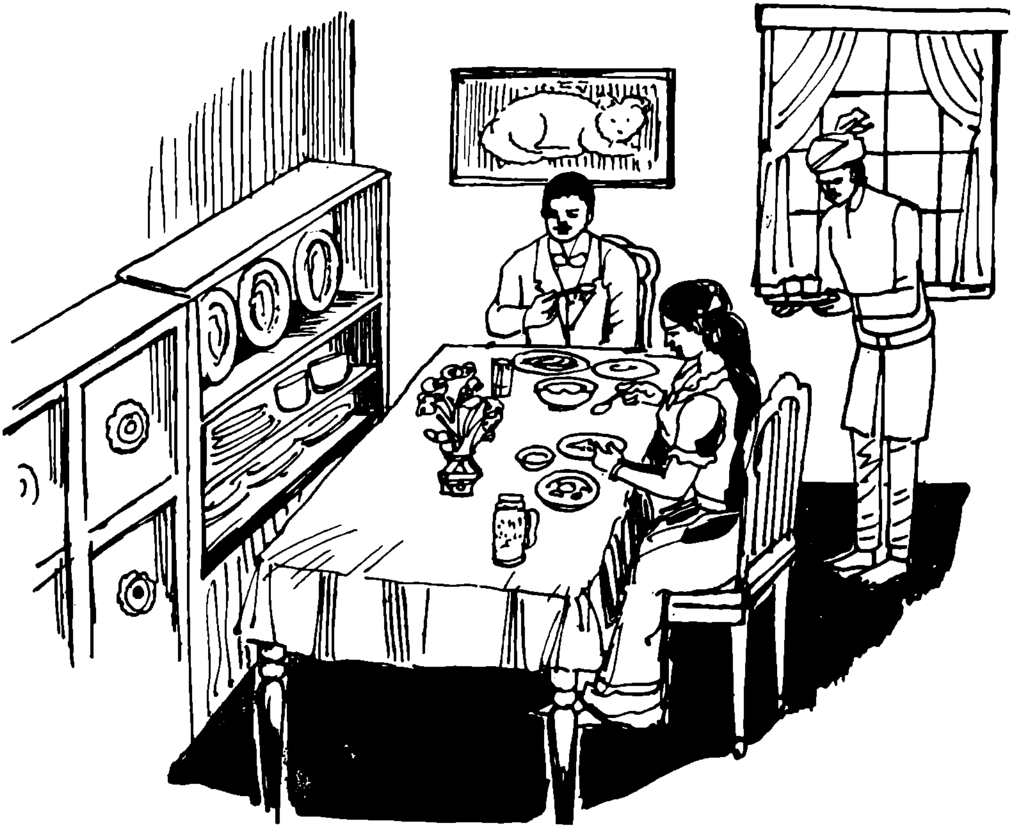

अम्मां का घर छोड़कर इलाहाबाद आकर मैं भी धीरे-धीरे मेज पर ही भोजन करने लगी थी।

यहां फूल और पीतल के बर्तन बहुत कम थे। चीनी की रकाबियां और प्याले आलमारियों में सजे रखे थे। भोजन मेज पर आता था। बाबूजी बड़े चाव से भोजन करते। मुझे पहले कुछ शर्म आती थी; लेकिन धीरे-धीरे मैं भी मेज ही पर भोजन करने लगी। हमारे पास एक सुन्दर टमटम भी थी। अब हम पैदल बिलकुल न चलते। किसी से मिलने दस पग भी जाना होता, तो गाड़ी तैयार कराई जाती। बाबूजी कहते—यही फैशन है।

बाबूजी की आमदनी अभी बहुत कम थी। भली-भांति खर्च भी न चलता था। कभी-कभी मैं उन्हें चिन्ताकुल देखती तो समझाती कि जब आय इतनी कम है, तो व्यय इतना क्यों बढ़ा रखा है? कोई छोटा-सा मकान ले लो। दो नौकरों से भी काम चल सकता है। लेकिन बाबूजी मेरी बातों पर हँस देते और कहते—मैं अपनी दरिद्रता का ढिंढोरा अपने-आप क्यों पीटूं? दरिद्रता प्रकट करना दरिद्र होने से अधिक दुःखदायी होता है। भूल जाओ कि हम लोग निर्धन हैं, फिर लक्ष्मी हमारे पास आप दौड़ी आवेगी। खर्च बढ़ना, आवश्यकताओं का अधिक होना ही द्रव्योपार्जन की पहली सीढ़ी है। इससे हमारी गुप्त-शक्तियां विकसित हो जाती हैं और हम उन कष्टों को झेलते हुए आगे पग धरने के योग्य होते हैं। 'संतोष' दरिद्रता का दूसरा नाम हैं।

अस्तु, हम लोगों का खर्च दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। हम लोग सप्ताह में तीन बार थियेटर जरूर देखने जाते। सप्ताह में एक बार मित्रों को भोज अवश्य ही दिया जाता। अब मुझे सूझने लग कि जीवन का लक्ष्य सुख-भोग ही है। ईश्वर को हमारी उपासना की इच्छा नहीं। उसने हमको

उत्तम-उत्तम वस्तुएँ भोगने के लिए ही दी हैं। उनको भोगना ही उसकी सर्वोत्तम आराधना है। एक ईसाई लेडी मुझे पढ़ाने तथा गाना सिखाने आने लगी। घर में एक पियानो भी आ गया। इन्हीं आनन्दों में फंसकर मैं रामायण और भक्तमाल को भूल गयी। वे पुस्तकें मुझे अप्रिय मालूम होने लगीं। देवताओं पर से विश्वास भी उठ गया।

धीरे-धीरे यहां के बड़े लोगों से स्नेह और सम्बन्ध बढ़ने लगा। यह एक बिलकुल नई सोसायटी थी। इसका रहन-सहन, आहार-व्यवहार और आचार-विचार मेरे लिए सर्वथा अनोखे थे। मैं इस सोसाइटी में ऐसी जान पड़ती, जैसे मोरों में कौवा। इन लेडियों की बात-चीत कभी थियेटर और घुड़दौड़ के विषय में होती, कभी टेनिस समाचारपत्रों और अच्छे-अच्छे लेखकों के लेखों पर। उनके चातुर्य, बुद्धि की तीव्रता, फुर्ती और चपलता पर मुझे अचम्भा होता। ऐसा मालूम होता कि वे ज्ञान और प्रकाश की पुतलियां हैं। वे बिना घूंघट बाहर निकलतीं। मैं उनके साहस पर चकित रह जाती। वे मुझे भी कभी-कभी अपने साथ ले जाने की चेष्टा करतीं; लेकिन मैं लज्जावश न जा सकती। मैं उन लेडियों को कभी उदास या चिन्तित न पाती। मिस्टर दास बहुत बीमार थे; पर मिसेज दास के माथे पर चिन्ता का चिह्न तक न था। मिस्टर बागड़ी नैनीताल में तपेदिक का इलाज करा रहे थे; पर मिसेज वागड़ी नित्य टेनिस खेलने जाती थी। इस अवस्था में मेरी क्या दशा होती, यह मैं ही जानती हूँ।

इन लेडियों की रीति-नीति में एक आकर्षण-शक्ति थी, जो मुझे खींचे लिये जाती थी। मैं उन्हें सदैव आमोद-प्रमोद के लिए उत्सुक देखती, और मेरा भी जी चाहता कि उन्हीं की भाँति मैं भी निस्संकोच हो जाती। उनका

अंग्रेजी वार्त्तालाप सुनकर मुझे मालूम होता कि वे देवियां हैं। मैं अपनी इन त्रुटियों की पूर्ति के लिए प्रयत्न किया करती थी।

इसी बीच में मुझे एक खेदजनक अनुभव होने लगा। यद्यपि बाबूजी पहले से मेरा अधिक आदर करते, मुझे सदैव 'डियर-डार्लिङ्ग' आदि कहकर पुकारते थे, तथापि मुझे उनकी बातों में एक प्रकार की बनावट मालूम होती थी। ऐसा प्रतीत होता, मानो ये बातें उनके हृदय से नहीं, केवल मुख से निकलती हैं। उनके स्नेह और प्यार में हार्दिक भावों की जगह अलंकार ज्यादा होता था; किन्तु और भी अचम्भे की बात तो यह थी कि अब मुझे बाबूजी पर वह पहले की-सी श्रद्धा न रही थी। अब उनकी सिर की पीड़ा से मेरे हृदय में पीड़ा न होती थी। मुझमें आत्म-गौरव का आविर्भाव होने लगा था। अब मैं अपना बनाव-शृङ्गार इसलिए करती थी कि संसार में यह भी मेरा एक कर्त्तव्य है; इसलिए नहीं कि मैं किसी एक पुरुष की व्रतधारिणी हूँ। अब मुझे भी अपनी सुन्दरता पर गर्व होने लगा था। मैं अब किसी दूसरे के लिए नहीं, अपने लिए जीती थी। त्याग तथा सेवा का भाव मेरे हृदय से लुप्त होने लगा था।

मैं अब भी परदा करती थी; परन्तु हृदय अपनी सुन्दरता की सराहना सुनने के लिए व्याकुल रहता था। एक दिन मिस्टर दास तथा और भी अनेक सभ्यगण बाबूजी के साथ बैठे हुए थे। मेरे और उनके बीच में केवल एक परदे की आड़ थी। बाबूजी मेरी इस झिझक से बहुत ही लज्जित थे। इसे वह अपनी सभ्यता में काला धब्बा समझते थे! कदाचित् वह दिखाना चाहते थे कि मेरी स्त्री इसलिए परदे में नहीं है कि वह रूप तथा वस्त्राभूषणों में किसी से कम है; बल्कि इसलिए कि अभी उसे लज्जा आती है। वह मुझे किसी बहाने से बार-बार परदे के निकट बुलाते, जिससे उनके मित्र

सुन्दरता और वस्त्राभूषण देख लें। अन्त में कुछ दिन बाद मेरी झिझक
। हो गयी। इलाहाबाद आने के पूरे दो वर्ष बाद मैं बाबूजी के साथ
परदे के सैर करने लगी। सैर के बाद टेनिस की नौबत आयी। अन्त
मैंने क्लब में जाकर दम लिया। पहले यह टेनिस और क्लब मुझे
ा-सा मालूम होता था, मानो वे लोग व्यायाम के लिए नहीं बल्कि
के लिए टेनिस खेलने आते थे। वे कभी न भूलते थे कि हम टेनिस

बाबूजी मुझे बार-बार अपने मित्रों को दिखाने के लिए पर्दे के पास
बुलाते और लज्जावश मैं बाहर न आती।

खेल रहे हैं। उनके प्रत्येक काम में, दौड़ने में, उचकने में एक कृत्रिमता होती थी, जिससे यह प्रतीत होता था कि इस खेल का प्रयोजन कसरत नहीं, केवल दिखावा है।

क्लब में इससे भी विचित्र अवस्था थी। वह पूरा स्वांग था, भद्दा और बेजोड़। लोग अंगरेजी के चुने हुए शब्दों का प्रयोग करते थे, जिनमें कोई सार न होता, नकली हंसी हंसते थे, जिनका कोई अवसर न होता था। स्त्रियों की वह फूहड़-निर्लज्जता और पुरुषों की वह भाव शून्य स्त्री-

इस प्रकार मेरा अधिकतम समय सजने-संवरने में ही जाता था।

पूजा मुझे तनिक भी न भाती थी। चारों ओर अंग्रेजी चाल-ढ़ाल की एक हास्यजनक नकल थी; परन्तु क्रमशः मैं भी वही रंग पकड़ने और उन्हीं का अनुकरण करने लगी। अब मुझे अनुभव हुआ कि इस प्रदर्शन-लोलुपता में कितनी शक्ति हैं। मैं अब नित्य नये शृङ्गार करती, नित्य नया रूप भरती, केवल इसलिए कि क्लब में सबकी आंखों में चुभ जाऊं। अब मुझे बाबूजी के सेवा-सत्कार से अधिक अपने बनाव-शृङ्गार की धुन रहती थी। यहां तक कि यह शौक एक नशा-सा बन गया। इतना ही नहीं, लोगों से अपने सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर मुझे एक अभिमान-मिश्रित आनन्द का अनुभव होने लगा। मेरी लज्जाशीलता की सीमाएं विस्तृत हो गयीं वह दृष्टिपात, जो कभी मेरे शरीर के प्रत्येक रोएं को खड़ा कर देता, और वह हास्य-कटाक्ष, जो कभी मुझे विष खा लेने को प्रस्तुत कर देता, उनसे मुझे एक उन्माद-पूर्ण हर्ष होता था; परन्तु जब कभी मैं अपनी अवस्था पर आन्तरिक दृष्टि डालती तो मुझे बड़ी घबड़ाहट होती थी। यह नाव किस घाट लगेगी? कभी-कभी इरादा करती कि क्लब न जाऊंगी; परन्तु समय आते ही फिर तैयार हो जाती। मैं अपने वश में न थी। मेरी सत्कल्पनाएं निर्बल हो गयी थीं।

: ५ :

दो वर्ष और बीत गये, और अब बाबूजी के स्वभाव में एक विचित्र परिवर्तन होने लगा। वह उदास और चिंतित रहने लगे। मुझसे बहुत कम बोलते। ऐसा जान पड़ता कि इन्हें कठिन चिन्ता ने घेर रखा है, या कोई बीमारी हो गयी है। मुंह बिलकुल सूखा रहता था। तनिक-तनिक सी बात पर नौकरों से झल्लाने लगते, और बाहर बहुत कम जाते।

अभी एक ही मास पहले वह सौ काम छोड़कर क्लब अवश्य जाते थे, वहां गये बिना उन्हें कल न पड़ती थी; पर अब अधिकतर अपने कमरे में आराम-कुर्सी पर लेटे हुए समाचारपत्र और पुस्तकें देखा करते थे। मेरी समझ में न आता कि बात क्या है।

एक दिन उन्हें बड़े जोर का बुखार आया। दिन भर बेहोश पड़े रहे। परन्तु मुझे उनके पास बैठने में अनकुस- सा लगता था। मेरा जी एक उपन्यास में लगा हुआ था। उनके पास जाती और पल भर में फिर लौट आती थी। टेनिस का समय आया, तो दुविधा में पड़ गयी कि जाऊं या न जाऊं। देर तक मन में यह संग्राम होता रहा। अन्त को मैंने यही निर्णय किया कि मेरे यहां रहने से वह कुछ अच्छे तो हो नहीं जायँगे इससे मेरा यहां बैठा रहना बिल्कुल निरर्थक है। मैंने बढ़िया वस्त्र पहने, और रैकेट लेकर क्लब घर जा पहुंची। वहां मैंने मिसेज दास और मिसेज बागची से बाबूजी की दशा बतलायी, और सजल नेत्र चुपचाप बैठी रही। जब सब लोग कोर्ट में जाने लगे और मिस्टर दास ने मुझसे चलने को कहा, तो मैं ठंडी आह भरकर कोर्ट में जा पहुंची और खेलने लगी।

आज से तीन वर्ष पूर्व बाबूजी को इसी प्रकार बुखार आ गया था, मैं रात-भर उन्हें पंखा झलती रही थी, हृदय व्याकुल था, और यही जी चाहता था कि इनके बदले मुझे बुखार आ जाय, परन्तु यह उठ बैठें! पर अब हृदय तो स्नेह-शून्य हो गया था, दिखावा अधिक था। अकेले रोने की मुझमें क्षमता न रह गयी थी। मैं सदैव की भांति रात को नौ बजे लौटी। बाबूजी का जी कुछ अच्छा न जान पड़ा। केवल उन्होंने मुझे दबी दृष्टि से देखा और करवट बदल ली; परन्तु मैं लेटी, तो मेरा ही हृदय मुझे अपनी स्वार्थपरता और प्रमोदासक्ति पर धिक्कारता रहा।

मैं अब अंगरेजी उपन्यासों को समझने लगी थी। हमारी बातचीत अधिक उत्कृष्ट और आलोचनात्मक होती थी।

हमारी सभ्यता का आदर्श अब बहुत ही उच्च हो गया था। हमको अब अपनी मित्र-मण्डली से बाहर दूसरों से मिलने-जुलने में संकोच होता था। अब हम अपने से छोटी श्रेणी के लोगों से बोलने में अपना अपमान समझते थे। नौकरों को अपना नौकर समझते थे, और बस। हमको उनके निजी मामलों से कुछ मतलब न था। हम उनसे अलग रहकर उनके ऊपर अपना रोब जमाये रखना चाहते थे। हमारी इच्छा यही थी कि वह हम लोगों को साहब समझें। हिन्दुस्तानी स्त्रियों को देखकर मुझे उनसे घृणा होती थी; उनमें शिष्टता न थी। खैर।

बाबूजी का जी दूसरे दिन भी न सँभला। मैं क्लब न गयी; परन्तु जब लगातार तीन दिन तक उन्हें बुखार आता गया और मिसेज दास ने बारम्बार एक नर्स बुलाने का आदेश किया, तो मैं सहमत हो गयी। उस दिन से रोगी की सेवा-शुश्रूषा से छुट्टी पाकर बड़ा हर्ष हुआ। यद्यपि दो दिन मैं क्लब न गयी थी। परन्तु मेरा जी वहीं लगा रहता था; बल्कि अपने भीरुतापूर्ण त्याग पर क्रोध भी आता था!

एक दिन तीसरे पहर मैं कुर्सी पर लेटी हुई एक अँगरेजी पुस्तक पढ़ रही थी। अचानक मन में यह विचार उठा कि बाबूजी का बुखार असाध्य हो जाय, तो? पर इस विचार से लेश-मात्र भी दुःख न हुआ मैं इस शोकमय कल्पना का मन-ही-मन आनन्द उठाने लगी। मिसेज दास, मिसेज नायडू, मिसेज श्रीवास्तव, मिस खरे, मिसेज शरगा अवश्य ही मातमपुर्सी करने आवेंगी। उन्हें देखते ही मैं सजलनेत्र हो उठूंगी, और कहूंगी—

बहनों ! मैं लुट गयी। हाय मैं लुट गयी। अब मेरा जीवन अँधेरी रात के भयावह वन या श्मशान के दीपक के समान है। परन्तु मेरी अवस्था पर दु:ख न प्रकट करो। मुझ पर जो पड़ेगी, उसे मैं उस महान् आत्मा के मोक्ष के विचार से सह लूंगी !

मैंने इस प्रकार मन में एक शोक-पूर्ण व्याख्यान की रचना कर डाली। यहाँ तक कि अपने उस वस्त्र के विषय में भी निश्चय कर लिया, जो मृतक के साथ श्मशान जाते समय पहनूंगी।

इस घटना की शहर भर में चर्चा हो जायगी। सारे कैंटोन्मेण्ट के लोग मुझे सम्वेदना के पत्र भेजेंगे। तब मैं उनका उत्तर समाचार पत्रों में प्रकाशित कर दूंगी कि मैं प्रत्येक शोक-पत्र का उत्तर देने में असमर्थ हूं। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। उसे रोने के सिवा और किसी काम के लिए समय नहीं है। मैं इस हमदर्दी के लिए उन लोगों की कृतज्ञ हूं, और उनसे विनय-पूर्वक निवेदन करती हूं कि वे मृतक की आत्मा की सद्गति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें।

मैं इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी कि नर्स ने आकर कहा—आपको साहब याद करते हैं। यह मेरे क्लब जाने का समय था। मुझे उनका बुलाना अखर गया; लेकिन क्या करती, किसी तरह उनके पास गयी। बाबूजी को बीमार हुए लगभग एक मास हो गया था। वह अत्यन्त दुर्बल हो रहे थे। उन्होंने मेरी ओर विनय-पूर्ण दृष्टि से देखा। उसमें आँसू भरे हुए थे। मुझे उन पर दया आयी। बैठ गयी, और ढाढ़स देते हुए बोली—क्या करूँ ? कोई दूसरा डॉक्टर बुलाऊँ ?

बाबूजी आँखें नीची करके अत्यन्त करुण भाव से बोले—मैं यहाँ कभी नहीं अच्छा हो सकता, मुझे अम्माँ के पास पहुँचा दो।

मैंने कहा—क्या आप समझते हैं कि वहाँ आपकी चिकित्सा यहाँ से अच्छी होगी ?

बाबूजी बोले – क्या जाने क्यों मेरा जी अम्माँ के दर्शनों को लालायित हो रहा हैं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं वहाँ बिना दवा-दर्पन के भी अच्छा हो जाऊँगा।

मैं—यह आपका केवल विचार-मात्र है।

बाबूजी—शायद ऐसा ही हो। लेकिन मेरी यह विनय स्वीकार करो। मैं इस रोग से नहीं, इस जीवन से ही दुःखित हूँ।

मैंने अचरज से उनकी ओर देखा।

बाबूजी फिर बोले—हाँ, इस जिन्दगी से तंग आ गया हूँ। मैं अब समझ रहा हूँ, मैं जिस स्वच्छ, लहराते हुए निर्मल जल की ओर दौड़ा जा रहा था, वह मरुभूमि है। मैं इस प्रकार जीवन के बाहरी रूप पर लट्टू हो रहा था। परन्तु अब मुझे उसकी आन्तरिक अवस्थाओं का बोध हो रहा है। इन चार वर्षों में मैंने इस उपवन में खूब भ्रमण किया, और उसे आदि से अन्त तक कंटकमय पाया। यहाँ न तो हृदय को शांति है, न आत्मिक आनन्द। एक उन्मत्त, अशान्तिमय, स्वार्थ-पूर्ण, विलास युक्त जीवन है। यहाँ न नीति है न धर्म, न सहानुभूति, न सहृदयता। पर परमात्मा के लिए मुझे इस अग्नि से बचाओ। यदि और कोई उपाय न हो तो अम्माँ को एक पत्र ही लिख दो, वह अवश्य यहाँ आवेंगी। अपने अभागे पुत्र का दुःख उनसे न

देखा जायगा। उन्हें इस सोसाइटी की हवा अभी नहीं लगी, वह आवेंगी। उनकी वह ममतापूर्ण दृष्टि, वह स्नेहपूर्ण शुश्रूषा मेरे लिए सौ औषधियों का काम करेगी। उनके मुख पर वह ज्योति प्रकाशमान होगी, जिसके लिए मेरे नेत्र तरस रहे हैं। उनके हृदय में स्नेह है, विश्वास है। यदि उनकी गोद में मैं मर भी जाऊँ तो मेरी आत्मा को शांति मिलेगी।

मैं समझी कि यह बुखार की बकझक है। नर्स से कहा—जरा इनका टेम्परेचर तो लो, मैं अभी डॉक्टर के पास जाती हूँ। मेरा हृदय एक अज्ञात भय से काँपने लगा। नर्स ने थर्मामीटर निकाला; परन्तु ज्यों ही वह बाबूजी के समीप गयी, उन्होंने उसके हाथ से वह यंत्र छीनकर पृथ्वी पर पटक दिया। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। फिर मेरी ओर एक अवहेलना-पूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो कि मैं क्लब-घर जाती हूँ, जिसके लिए तुमने ये वस्त्र धारण किये हैं और गाउन पहनी है। खैर, उधर घूमती हुई यदि डॉक्टर के पास जाना, तो उनसे कह देना कि यहाँ टेम्परेचर उस बिन्दु पर आ पहुँचा है, जहां आग लग जाती है।

मैं और भी अधिक भयभीत हो गयी। हृदय में एक करुण चिंता का संचार होने लगा। गला भर आया। बाबूजी ने नेत्र मूंद लिये थे और उनकी साँस बेग से चल रही थी। मैं द्वार की ओर चली कि किसी को डॉक्टर के पास भेजूं। यह फटकार सुनकर स्वयं कैसे जाती? इतने में बाबूजी उठ बैठे और विनीत भाव से बोले—श्यामा, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। बात दो सप्ताह से मन में थी; पर साहस न हुआ। आज मैंने निश्चय कर लिया है कि कह ही डालूं, मैं अब फिर अपने घर जाकर वही पहले की-सी जिन्दगी बिताना चाहता हूँ। मुझे अब इस जीवन से घृणा हो

गयी है, और यही मेरी बीमारी का मुख्य कारण है। मुझे शारीरिक नहीं, मानसिक कष्ट है। मैं फिर तुम्हें वही पहले की-सी सलज्ज, नीचा सिर करके चलनेवाली, पूजा करने वाली, रामायण पढ़नेवाली, घर का काम-काज

मुझे पूर्णतया पश्चिमी सभ्यता की ओर उन्मुख देख बाबूजी बोले—मैं फिर तुम्हें वही पहले जैसी सलज्ज, ईश्वर से डरने वाली, रामायण पढ़ने वाली, पति-श्रद्धा से परिपूर्ण स्त्री के रूप में देखना चाहता हूं।

करनेवाली, चरखा कातनेवाली, ईश्वर से डरनेवाली, पति-श्रद्धा से परिपूर्ण स्त्री देखना चाहता हूँ। मैं विश्वास करता हूँ, तुम मुझे निराश न करोगी। तुमको सोलहों आने अपनी बनाना और सोलहों आने तुम्हा बनना चाहता हूँ। अब मैं समझ गया कि उसी सादे पवित्र जीवन में वास्तविक सुख है। बोलो, स्वीकार है ? तुमने सदैव मेरी आज्ञाओं का पालन किया है, इस समय निराश न करना; नहीं तो इस कष्ट और शोक का न जाने कितना भयंकर परिणाम हो।

मैं सहसा कोई उत्तर न दे सकी। मन में सोचने लगी—इस स्वतंत्र जीवन में कितना सुख था ? ये मजे वहाँ कहाँ ? क्या इतने दिन स्वतन्त्र वायु में विचरण करने के पश्चात् फिर उसी पिंजड़े में जाऊँ ? वही लौंडी बनकर रहूँ ? क्यों इन्होंने मुझे वर्षों स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया, वर्षों देवतों की, रामायण की, पूजा-पाठ की, व्रत-उपवास की बुराई की, हँसी उड़ाई ? अब जब मैं उन बातों को भूल गयी, उन्हें मिथ्या समझने लगी, तो फिर मुझे उसी अन्ध-कूप में ढकेलना चाहते हैं। मैं तो इन्हीं की इच्छा के अनुसार चलती हूँ, फिर मेरा अपराध क्या है ? लेकिन बाबूजी के मुख पर एक ऐसी दीनतापूर्ण विवशता थी, कि मैं प्रत्यक्ष अस्वीकार न कर सकी। बोली—आखिर आपको यहाँ क्या कष्ट है ?

मैं उनके विचारों की तह तक पहुँचना चाहती थी।

बाबूजी फिर उठ बैठे और मेरी ओर कठोर दृष्टि से देखकर बोले—बहुत ही अच्छा होता, कि तुम इस प्रश्न को मुझसे पूछने के बदले अपने ही हृदय से पूछ लेती। क्या अब मैं तुम्हारे लिए वही हूँ, जो आज से तीन वर्ष पहले था ? जब मैं तुमसे अधिक शिक्षा-प्राप्त, अधिक बुद्धिमान्, अधिक

जानकार होकर तुम्हारे लिए वह नहीं रहा जो पहले था—तुमने चाहे इसका अनुभव न किया हो परन्तु मैं स्वयं कर रहा हूँ—तो मैं कैसे अनुमान करूँ, कि उन्हीं भावों ने तुम्हें स्खलित न किया होगा ? नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष चिह्न देख पड़ते है, कि तुम्हारे हृदय पर उन भावों का और भी अधिक प्रभाव पड़ा है। तुमने अपने को ऊपरी बनाव-चुनाव और विलास के भँवर में डाल दिया है, और तुम्हें उसकी लेशमात्र भी सुध नही है। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि सभ्यता, स्वैच्छाचारिता का भूत स्त्रियों के कोमल हृदय पर बड़ी सुगमता से कब्जा कर सकता हैं। क्या अब से तीन वर्ष पूर्व भी तुम्हें यह साहस हो सकता था कि मुझे इस दशा में छोड़कर किसी पड़ोसिन के यहाँ गाने-बजाने चली जातीं ? मैं बिछौने पर पड़ा रहता, और तुम किसी के घर जाकर कलोलें करतीं ? स्त्रियों का हृदय आधिक्य-प्रिय होता है; परन्तु इस नवीन आधिक्य के बदले मुझे वह पुराना आधिक्य कहीं ज्यादा पसन्द है। उस आधिक्य का फल शारीरिक अभ्युदय और हृदय की पवित्रता थी; पर इस आधिक्य का परिणाम है, छिछोरापन, निर्लज्जता, दिखावा और स्वेच्छाचार। उस समय यदि तुम इस प्रकार मिस्टर दास के सन्मुख हँसती-बोलतीं, तो मैं या तो तुम्हें मार डालता, या स्वयं विष-पान कर लेता; परन्तु बेहयाई ऐसे जीवन का प्रधान तत्व है। मैं सब कुछ स्वयं देखता और सहता हूँ, कदाचित् सहे भी जाता, यदि इस बीमारी ने मुझे सचेत न कर दिया होता। अब यदि तुम यहाँ बैठी भी रहो, तो मुझे सन्तोष न होगा; क्योंकि मुझे यह विचार दुःखित करता रहेगा, कि तुम्हारा हृदय यहाँ नहीं हैं। मैंने अपने को उस इन्द्रजाल से निकालने का निश्चय कर लिया है, जहाँ धन का नाम मान है, इन्द्रियलिप्सा का सभ्यता और भ्रष्टता का विचार-स्वातंत्र्य। बोलो, मेरा प्रस्ताव स्वीकार है ?

मेरे हृदय पर वज्रपात-सा हो गया। बाबूजी का अभिप्राय पूर्णतया हृदयंगम हो गया। अभी हृदय में कुछ पुरानी लज्जा बाकी थी। वह यंत्रणा असह्य हो सयी। लज्जा पुनर्जीवित हो उठी। अन्तरात्मा ने कहा—अवश्य! मैं अब वह नहीं हूँ, जो पहले थी। उस समय मैं इनको अपना इष्टदेव मानती थी, इनकी आज्ञा शिरोधार्य थी; पर अब वह मेरी दृष्टि में एक साधारण मनुष्य हैं। मिस्टर दास का चित्र मेरे नेत्रों के सामने खिंच गया। कल मेरे हृदय पर उस दुरात्मा की बातों का कैसा नशा छा गया, यह सोचते ही नेत्र लज्जा से झुक गये। बाबूजी की आन्तरिक अवस्था उनके मुखड़े ही से प्रकाशमान हो रही थी। स्वार्थ और विलास-लिप्सा के विचार मेरे हृदय से दूर हो गये थे। उनके बदले ये शब्द ज्वलंत अक्षरों में लिखे हुए नजर आये—तूने फैशन और वस्त्राभूषणों में अवश्य उन्नति की है, तुझमें अपने स्वार्थों का ज्ञान हो आया है, तुझमें जीवन के सुख भोगने की योग्यता अधिक हो गयी है, तू अब अधिक गर्विणी, दृढ़-हृदय और शिक्षा-सम्पन्न भी हो गयी; लेकिन तेरे आत्मिक बल का विनाश हो गया क्योंकि तू अपने कर्त्तव्य को भूल गयी।

मैं दोनों हाथ जोड़कर बाबूजी के चरणों पर गिर पड़ी। कंठ रुँध गया, एक शब्द भी मुँह से न निकला, अश्रु-धारा बह चली।

अब मैं फिर अपने घर पर आ गयी हूँ। अम्मांजी अब मेरा अधिक सम्मान करती हैं, बाबूजी सन्तुष्ट दीख पड़ते हैं। वह अब स्वयं प्रतिदिन सन्ध्या-वन्दन करते हैं।

मिसेज दास के पत्र कभी-कभी आते हैं। वह इलाहाबादी सोसायटी के नवीन समाचारों से भरे होते हैं। मिस्टर दास और मिस भाटिया के सम्बन्ध में कलुषित बातें उड़ रही है। मैं इन पत्रों का उत्तर तो दे देती

हूँ परन्तु चाहती हूँ कि वह अब न आते, तो अच्छा होता। वह मुझे उन दिनों की याद दिलाते हैं, जिन्हें मैं भूल जाना चाहती हूँ।

बाबूजी ने इस प्रकार अधीर होकर मुझे अपनी आन्तरिक अवस्था के बारे में बताया तो मैं दोनों हाथ जोड़कर झूंठे मान के बाँध को तोड़कर बाबूजी के चरणों पर गिर पड़ी।

कल बाबूजी ने बहुत-सी पुरानी पोथियाँ अग्निदेव को अर्पण कीं। उनमें खासकर वाइल्ड की कई पुस्तकें थीं। वह अब अंगरेजी पुस्तकें बहुत कम पढ़ते हैं। उन्हें कार्लाइल, रस्किन और एमरसन के सिवा और कोई पुस्तक पढ़ते मैं नहीं देखती। मुझे तो अपनी रामायण और महाभारत में फिर वही आनंद प्राप्त होने लगा हैं। चरखा अब पहले से अधिक चलाती हूँ, क्योंकि इस बीच में चरखे ने खूब प्रचार पा लिया है। ☐

अब पुन: अपनी रामायण और महाभारत में फिर वही आनंद प्राप्त होने लगा है।

मुन्शी प्रेमचंद का सचित्र किशोर साहित्य

स्वामी विवेकानन्द
महाराणा प्रताप
अकबर महान
पंच परमेश्वर
शराब की दुकान
ईदगाह
बड़े घर की बेटी
नमक का दरोगा
गुल्ली डण्डा
दो बैलों की कथा
ठाकुर का कुआ
बूढ़ी काकी
सुजान भगत
ममता
मन्दिर
पूस की रात
[illegible]

मृतक भोज
सत्याग्रह
दूध का दाम
मुक्ति मार्ग
शंखनाद
सद्गति
घरजमाई
मर्यादा की वेदी
दो भाई
मंत्र
राजा हरदौल
राजा मानसिंह
गोपालकृष्ण गोखले
माँ
शान्ति
क्षमा

शतरंज के खिलाड़ी
बलिदान की बेदी
पछतावा
खुदाई फौजदार
रानी सारन्धा
कजाकी
महातीर्थ
बालक
बड़े भाई साहब
समरयात्रा
न्याय
स्वामिनी
झांकी
जंगल की कहानियां
नशा
स्मृति का पुजारी